अणुव्रत आदि होते हैं। सम्यग्दर्शन में सम्यग्दर्शन के योग्य होते है और मुनि को मुनि के योग्य होते हैं। ऐसी मुनिदशा की मर्यादा होती है। छठ्ठे–सातवें गुणस्थान में झुलते मुनि उसमें ही आगे बढ़ते हैं और किसीको उस भव में केवलज्ञान होता है, किसीको दूसरे भव में केवलज्ञान होता है। ऐसी मुनि की दशा है।

मुमुक्षु :– सातवें को बाधा पहुँचे ऐसे शुभभाव में भी नहीं आते और छठ्ठेसे नीचे जाये ऐसे अशुभ परिणाम भी नहीं होते।

समाधान :– ऐसे अशुभ भी नहीं आते। छठ्ठेसे नीचे जाये ऐसे नहीं आते और सातवे को विघ्न हो ऐसे शुभभाव नहीं होते।

मुमुक्षु :– इसका नाम मुनिपना की मर्यादा है।

समाधान :– हाँ, यह मुनिपना की मर्यादा है।

मुमुक्षु :– मुनिराज सम्यग्दृष्टि को वंदन करते हैं, नियमसार गाथा–७२ में है। इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

समाधान :– मुनिराज सम्यग्दृष्टि को वंदन करते हैं यानी उनका आदर करते हैं। मुक्ति का मार्ग पूरा आदर करने योग्य है। सम्यग्दर्शनसे लेकर अंतिम कक्षा का जो मुक्ति का मार्ग है, मुक्ति की दशा है वह सब आदर करने योग्य है। मुनि व्यवहार नहीं करते। बाहरसे सम्यग्दृष्टि को देखकर सीधे वंदन करे ऐसा नहीं होता। उनका अंतर में आदर करते हैं। जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, ऐसा सम्यग्दर्शन जिसने प्राप्त किया ऐसा आत्मा वंदन करने योग्य है, उसको वंदन करता हूँ। उनका आदर करते हैं। उनको सीधा वंदन करते हैं ऐसा उसका अर्थ नहीं है। मुक्ति का मार्ग हमें आदरणीय है। जिसे मुक्ति का मार्ग प्रगट हुआ, ऐसी मुक्ति प्रगट हुई वह आदर करने योग्य है।

मुमुक्षु :– अनुमोदन किया।

समाधान :– अनुमोदन करते हैं। अनादि कालसे जो सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है, मुक्ति का मार्ग प्रारंभ नहीं हुआ है और मुक्ति का मार्ग शुरू होता है, जिसमें सम्यग्दर्शन मुख्य है, फिर उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब होता है। विशेष आराधना होती है। फिर तीनों रत्न एकत्रित हों तब पूरी दशा केवलज्ञान तक पहुँचते हैं। सम्यग्दर्शनसे लेकर जबसे मुक्ति का मार्ग प्रगट हुआ और मुक्ति का अंश प्रगट हुआ वह सब आदर करने योग्य है।

मुमुक्षु :– सन्मार्ग जयवंत वर्तो, उसमें वह आ गया। मार्ग में आ गये हैं।

समाधान :– उसमें आ गया। सन्मार्ग जयवंत वर्तो।

मुमुक्षु :– प्रति क्षण आत्मा को ऊर्ध्व रखना, कृपा करके (समझाईये)।

समाधान :– दूसरा क्या है?

मुमुक्षु :– ज्ञानी का उपयोग बाहर हो, फिर भी दृष्टि मूल में टिकी है, तो एकसाथ दोनों कैसे हो सकते हैं?

समाधान :- उपयोग बाहर हो और दृष्टि अन्दर हो, उपयोग बाहर है और दृष्टि अन्दर है। लेकिन उपयोग बाहर ऐसा नहीं है कि उपयोग एकदम बाहर ही है और दृष्टि अन्दर है। उसकी ज्ञान की परिणति, दृष्टि के साथ ज्ञान की परिणति भी अन्दर है। उपयोग भले बाहर हो, लेकिन दृष्टि के साथ ज्ञान की परिणति है। जो दृष्टि प्रगट हुई, जिस दृष्टिने आत्मा का आश्रय लिया, तो ज्ञान भी आत्मा का आश्रय लेता है, ज्ञान भी दृष्टि को आधार देता है। ज्ञान विपरीत कार्य करता है और दृष्टि विपरीत कार्य करती है, ऐसा नहीं है। एकदूजे को साथ देते हैं। दृष्टिने जिस आत्मा को ग्रहण किया उस आत्मा को ज्ञान भी ग्रहण करता है। लेकन ज्ञान का कार्य विशेष में दूसरे को जानता है। द्रव्य को, पर्याय को सबको जानता है। ज्ञान सब जानता है। दृष्टि एक आत्मा को ग्रहण करती है, उसका आश्रय ग्रहण करती है। ज्ञान उसको आधार देकर, उसका कार्य जैसा है वैसा रखकर उसका उपयोग बाहर जाता है। उपयोग ऐसे बाहर नहीं जाता, दृष्टि तोड़कर उपयोग बाहर नहीं जाता। दृष्टि को ग्रहणकरके, दृष्टि को साथ देकर उपयोग बाहर जाता है। उसकी ज्ञाताधारा वैसी की वैसी है। चारित्र भी जो दृष्टि है उसको आधार देकर उसमें स्थिर होता है। आत्मा का आश्रय लेकर चारित्र भी उसमें स्थिर होता है। सब एकदूजे को साथ देनेवाले हैं। एकदूसरेसे विरूद्ध नहीं है। साथ देकर कार्य करनेवाले हैं।

दृष्टिने जो आराधना शुरु की है उस आराधना को विशेष आराधन करनेवाले (हैं)। उसके साथ ज्ञान और चारित्र विशेष आराधना करनेवाले हैं। दृष्टि भले ही मुख्य हो, सब एकदूसरे को साथ देनेवाले हैं। उपयोग बाहर हो और दृष्टि कोई विपरीत कार्य करे, दृष्टि विपरीत और ज्ञान विपरीत कार्य करे ऐसा नहीं है। एकदूजे एकदूसरे को साथ देते हैं। कोई अपेक्षासे आत्मा नित्य, कोई अपेक्षासे अनित्य, कोई अपेक्षासे शुद्ध, कोई अपेक्षासे अशुद्ध, ये सब विरोधी नहीं है। द्रव्य-वस्तु अपेक्षासे शुद्ध और पर्याय में अशुद्धता (है)। यह सब अविरूद्ध है। अनेकान्त स्वभाव अविरोध है, वैसे उसकी परिणति भी अविरोध है। ज्ञान, ज्ञायक की धारा, दृष्टि, ज्ञायक की धारा, उसकी ज्ञाताधारा रखकर उपयोग बाहर जाता है।

उपयोग अनादिसे जैसे राग की एकत्वबुद्धिसे, राग की एकत्वबुद्धिसे उपयोग बाहर जाता था ऐसे नहीं जाता है। ज्ञायक की ज्ञाताधारा प्रतिक्षण हाजिर है और उपयोग बाहर जाता है। उपयोग अपनी परिणति, दृष्टि को आधार देकर, ज्ञायक की परिणति टिकाकर उपयोग बाहर जाता है। आत्मा को छोड़कर उपयोग बाहर नहीं जाता। ऐसी भेदज्ञान की धारा इसीप्रकार चलती हुई इसीप्रकारसे आगे बढ़ते हैं। परस्पर एकदूसरे के विरोधी नहीं हैं।

मुमुक्षु :- एक ही समय में उपयोग बाहर भी हो और अंतर...

समाधान :- अंतर में परिणति है। ज्ञान की परिणति साथ में है। दृष्टि और ज्ञान की परिणति है। उपयोग बाहर हो तो भी।

मुमुक्षु :- उस परिणति को आप लब्धरूप परिणति कहेंगे?

समाधान :– हाँ, वह लब्धरूप परिणति है। कार्य करनेवाले सब होते हैं, कार्य सबको एक ही करना होता है। अनन्त गुणरत्नाकर आत्मा है, उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र परस्पर एकदूसरे को साथ देनेवाले हैं।

मुमुक्षु :– अन्दर तकरार नहीं करते।

समाधान :– नहीं, अन्दर तकरार नहीं करते, विरोध नहीं है। ये इसको तोड़ दे, वह उसको तोड़ दे ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :– दर्शन, ज्ञान, चारित्र में भी ज्ञान मुख्य गुण है?

समाधान :– साधना में दर्शन की मुख्यता रहती है–सम्यग्दर्शन की। पहले जानने के लिये ज्ञान का व्यवहार आता है। अभी जाना नहीं है, निर्णय करने के लिये (ज्ञान होता है)। लेकिन साधना जहाँ शुरु हुई वहाँ आश्रय मज़बूतीसे सम्यग्दर्शन–दर्शनने लिया है। भले मुख्यता दर्शन की रहती है, लेकिन ज्ञान, चारित्र आदि सब साथ हो तो ही आराधना पूर्ण होती है। दर्शनने आत्मा को ग्रहण किया है, लेकिन आराधना विशेष तो तीनों रत्न एकत्रित हों तब होती है। केवलज्ञान तक पहुँचता है।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–६ C

मुमुक्षु :– रागादिसे भिन्न चिदानंद स्वभाव का भान और अनुभव हुआ, वहाँ धर्मी को मालूम पड़ता है कि नहीं मुझे अंतर का वेदन हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ?

समाधान :– अंतर में जीवन का परिवर्तन हो वह क्या मालूम नहीं पड़ता? लेकिन वह कैसे हो? वह तो गुरु के उपदेशसे होता है। अनन्त कालसे जो मार्ग अनजाना है वह गुरु के उपदेशसे होता है। अनन्त कालसे समझा नहीं है। गुरुदेवने परम उपकार किया है। उनके प्रतापसे सब समझे हैं। उनके प्रतापसे ही सब हुआ है। गुरुदेव के उपकार का तो क्या वर्णन करें? जितना करें उतना कम ही है। उनके उपकार बोलने की वाणी भी नहीं है। गुरुदेव का उपकार है। उन्होंने, स्वानुभूति किसे कहते हैं, मार्ग किसे कहते हैं, सब उन्होंने ही बताया है। उनका उपदेश तो कोई अनुपम था! गुरु के उपदेश के बिना स्वानुभूति प्रगट नहीं होती। ऐसा निमित्त–उपादान का सम्बन्ध है। अनादिकालसे अनजाना मार्ग, भगवान की वाणी साक्षात् मिले अथवा गुरु की वाणी मिले तो ही वह प्राप्त होता है। और अंतर में जो प्रगट हो वह मालूम नहीं पड़े ऐसा थोड़े ही न है? पूरे जीवन का परिवर्तन होता है। अंधकार और प्रकाश दोनों जैसे प्रतिपक्ष है, वैसे जो भिन्न हैं वह मालूम नहीं पड़े ऐसा

है क्या? विष और चीनी का स्वाद अलग-अलग मालूम नहीं पड़े ऐसा है क्या? उसे मालूम तो पड़ता ही है, पूरे जीवन का परिवर्तन हो जाता है।

कुन्दकुन्दाचार्य लखिते हैं, मेरे गुरुसे प्राप्त उपदेश, अनुग्रहपूर्वक दिया गया जो शुद्धात्मा का उपदेश, उससे जो प्रगट हुआ है। निरंतर झरता हुआ, आस्वाद में आता हुआ सुंदर जो आनन्द उसकी छापवाला प्रचुर स्वसंवेदन, स्वस्वरूप जो स्वसंवेदन वह प्रचुर स्वसंवेदन है। वह कैसे प्रगट हुआ? मेरे गुरु के उपदेशसे। ऐसा कहते हैं। शुद्धात्म तत्त्व का अनुग्रहपूर्वक मेरे गुरुने उपदेश दिया कि शुद्धात्मा कैसा है। कृपा करके उसका उपदेश दिया उससे प्रगट हुआ है। गुरुदेवने तो यहाँ बरसों तक वाणी बरसाई है, उपदेश के धोध बहाये हैं। उसके आगे तो सब (तुच्छ है)।

गुरुने तो शुद्धात्म तत्त्व का उपदेश दिया। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरे गुरुने जो कृपा करके उपदेश दिया उससे वह प्रगट हुआ है। गुरुदेवने तो बरसों तक वाणी बरसाई। स्वानुभूति किसे कहते हैं, वह कोई अपूर्व उपदेश दिया है। उस उपदेशसे कितने ही जीवों का परिवर्तन हुआ है। अंतर रुचि का परिवर्तन सबका हो गया है। गुरु के उपदेशसे सब मिलता है। आचार्यदेव कहते हैं, निरंतर झरता हुआ, आस्वाद में आता हुआ सुंदर आनन्द की छापवाला। उसकी छाप क्या है? कि सुंदर आनन्द जिसमें रहा है। उसकी छापवाला जो प्रचुर स्वसंवेदन। वे तो मुनिराज हैं। कुन्दकुन्दाचार्य की क्या बात करें? वे तो मुनिराज हैं। उनका स्वसंवेदन, उससे जो प्रगट हुआ है, ऐसा स्वसंवेदन है। कहते हैं, हमारे गुरुसे जिसका जन्म हुआ है। ऐसा जो मेरा ज्ञान का वैभव है उससे मैं आपको कहता हूँ। उनके प्रसादसे-जो गुरु द्वारा दिया गया, जो ज्ञान का वैभव प्रगट हुआ है वह उनसे हुआ है। जो प्रगट होता है वह गुप्त नहीं रहता। पूरे जीवन का परिवर्तन हो, अंतरमेंसे आत्मा प्रगट हो वह गुप्त थोड़े ही ना रहता है? अन्दर स्वयं अनन्त गुणसे भरपूर आत्मा स्वयं विभिन्न स्वभावों में झुलता हुआ, उसमें रमणता करता हुआ प्रगट होता है वह गुप्त नहीं रहता। भेदज्ञान हुआ वह गुप्त नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। वह तो कोई अपूर्व है, अनुपम है। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। वह तो कोई अपूर्व है। ध्यान करे, आत्मा के आश्रय बिना ध्यान करे, यथार्थ ज्ञान के बिना ध्यान करे, ऐसे प्रगट नहीं होता। यथार्थ ज्ञानपूर्वक का ध्यान हो तो उसमें भेदज्ञान होता है। द्रव्य पर दृष्टि, दृष्टि के ज़ोर में ज्ञाता की उग्रता में जो प्रगट होता है, और आत्मा शांत होकर स्थिर हो जाय। वह कोई (गुप्त नहीं है), वह तो उसे प्रगट ही है। वह गुप्त नहीं रहता।

मुमुक्षु :- माताजी! आपने दृष्टांत दिया वह तो छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झुलते हुए भावमुनि का दिया। तो चतुर्थ गुणस्थान में ऐसा आस्वाद आये तो ख्याल आता है? वह तो बहुत ही अल्प काल होता है।

समाधान :- चतुर्थ गुणस्थान में भले अल्प हो लेकिन ज्ञान उसे ग्रहण किये बिना नहीं

रहता। ज्ञान तो सबको ग्रहण कर लेता है। ज्ञान तो सब वेदन को ग्रहण (कर लेता है)। अल्पकाल यानी ऐसा काल नहीं है कि जो वेदन में नहीं आये और अप्रगट हो। उन्हें वेदन में आता है। मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है। तो भी सम्यग्दृष्टि को भी वह वेदन में आता है, ज्ञान में ग्रहण होता है। अल्पकाल हो तो भी उसे ग्रहण हुए बिना रहता नहीं। अंतर आत्मा में गया और पलटकर आत्मा अन्दरसे प्रगट होता है, वह उसे वेदन में आता है। उसे स्पष्टरूपसे साक्षात् प्रत्यक्ष निःशंकरूपसे उसके वेदन में आता है और वह ज्ञान में जान सकता है। सम्यग्दृष्टि भी।

यह तो शास्त्र में भी आता है। सम्यग्दृष्टि को चतुर्थ गुणस्थान में आत्मा की स्वानुभूति प्रगट होती है। नयों की लक्ष्मी कहाँ चली जाती है? प्रमाण अस्त हो जाता है। आत्मा कोई अलग प्रकारसे प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- चतुर्थ गुणस्थान में उसप्रकारसे ख्याल आता होगा।

समाधान :- चतुर्थ गुणस्थान में उसके वेदन में उसे ख्याल आता है। ख्याल मात्र कल्पित, ज्ञानसे, विकल्पसे जाना है ऐसा नहीं है, (लेकिन) समजरूपसे निर्विकल्प है लेकिन उसे ख्याल में, वेदन में, अनुभूति में आता है। वाणी में कुछ नहीं आता, लेकिन उसकी अनुभूति में आता है। विभाव में रागादि का वेदन है, ऐसे चिदानंद स्वभाव का आनंद झरता हुआ, आस्वाद में आता हुआ, वह उससे गुप्त नहीं रहता।

मुमुक्षु :- अल्प काल यानी माताजी! बीजली के चमकारे की भाँति अनुभव होता है?

समाधान :- अल्प काल यानी थोड़ा काल। थोड़ा-अंतर्मुहूर्त का काल। इसलिये ख्याल में नहीं आये ऐसा नहीं है, प्रत्यक्ष है। उसका अनुभव प्रत्यक्ष है, थोड़ा काल।

मुमुक्षु :- माताजी! एक तर्क ऐसा था कि उपयोग एक समय में एक को जाने। तो द्रव्य को जाने तो पर्याय को कैसे जाने?

समाधान :- द्रव्य को जाने तो पर्याय को भी, सब को जानता है। वहाँ उसे कोई विकल्प करके जानना नहीं है। सहज जानता है। द्रव्य और पर्याय सब सहज-सहज उपयोगात्मक जानता है। जो उसका स्वभाव है वह स्वभाव, उसकी परिणति उपयोगात्म द्रव्य और पर्याय सब जानता है। बिना विकल्प किये निर्विकल्परूपसे जानता है। वहाँ उसे कोई विकल्प करे तो उसमें खण्ड पड़ता है। उसे कोई खण्ड नहीं पड़ता। वह तो अबुद्धिपूर्वक है। उसके वेदन में तो द्रव्य और पर्याय सब जानने में आता है। भिन्न भिन्न उपयोग नहीं करना पड़ता। सिद्ध का अंश है। उसमें कोई तर्क लागू नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- यही द्रव्य-पर्याय का युगपद् प्रमाण हुआ न?

समाधान :- सब एकसाथ जानने में आता है, वह प्रमाणरूप हो जाता है, एकसाथ।

मुमुक्षु :- उसे कोई भेद पाड़ने की वृत्ति तो नहीं है।

समाधान :- वृत्ति नहीं है, सहज जानता है। वृत्ति हो तो जाने ऐसा नहीं है। बल्कि

आगे बढ़ गया है। विकल्प की वृत्ति (उत्पन्न होती है) तो उसकी भूमिका विकल्पवाली, रागवाली है। ये तो विकल्पसे आगे बढ़ गया है। उसे वृत्ति नहीं है। सब रागसे छूट गया है। उसे तो सहज जानने में आता है। बिना इच्छासे जानता है। जानने की इच्छा नहीं है, सब छूट गया है। निरिच्छासे जानता है, सहजरूपसे जानता है। केवलज्ञानी को कुछ जानने की इच्छा नहीं है तो भी सब जानते हैं। तो यह एक अंश है केवल का। निरिच्छासे जानता है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान का अंश है।

समाधान :- केवलज्ञान का अंश है। अंतर में स्वपरप्रकाशक है। बाहर उपयोग नहीं जाता है लेकिन स्वपरप्रकाशक है। द्रव्य को जाने, गुण को जाने, पर्याय को जाने, सबको जाने। स्वपरप्रकाशक है। स्वपरप्रकाशक गुण नाश नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्य में पर्याय नहीं तो फिर पर्याय को क्यों गौण की जाती है?

समाधान :- द्रव्य में पर्याय नहीं है अर्थात् द्रव्य और पर्याय का स्वरूप भिन्न है। द्रव्य, गुण और पर्याय तो द्रव्य का स्वरूप है। पर्याय का स्वरूप और द्रव्य का स्वरूप। द्रव्य शाश्वत और पर्याय पलटती है। इसलिये ऐसा कहते हैं कि द्रव्य में पर्याय नहीं है। द्रव्य के आश्रयसे पर्याय होती है। द्रव्य के आश्रय बिना पर्याय होती नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय सब वस्तु का स्वरूप है। पर्याय को गौण करने में जाती है। दृष्टि की मुख्यतासे पर्याय को गौण करने में आती है। दृष्टि द्रव्य पर है और पर्याय को गौण करता है। ज्ञान दोनों को जानता है। ज्ञान द्रव्य को जानता है, ज्ञान पर्याय को जानता है। दृष्टि के बल में आत्मा में जीवस्थान नहीं है, गुणस्थान नहीं है, कुछ नहीं है ऐसा कहते हैं। क्योंकि दृष्टि दूसरों को देखती ही नहीं। दृष्टि को अन्य कुछ देखना वह उसका विषय ही नहीं है। दृष्टि एक चैतन्य पर ही रखनी। वही उसका विषय है। दृष्टि दूसरा कुछ नहीं देखती। दृष्टि का विषय, दृष्टि एक को ही ग्रहण कर लेती है। फिर विशेष जानना वह ज्ञान का कार्य है, वह दृष्टि का कार्य नहीं है। एक पर दृष्टि रहती है। पर्याय कहीं चली नहीं जाती। दृष्टि का विषय एक को ग्रहण करने का है। उसमें पर्याय है।

दृष्टिने एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया। उसमें पर्याय तो है। ज्ञान सब जानता है। साधना की पर्याय है, अधूरी, पूर्ण पर्याय है, सब ज्ञान जानता है। उष्णता देते-देते जैसे सुवर्ण सोलह वाल होता है। सुवर्ण तो सुवर्ण ही है। लेकिन अभी अल्पता है, सुवर्ण में भी अभी पूरा स्पष्ट.. स्वभावसे सुवर्ण ही है, लेकिन उसे उष्णता देते-देते सोलह वाल होता है। वैसे अभी साधना की पर्याय अधूरी है। इसलिये पुरुषार्थ करता है, आगे बढ़ता है। ज्ञान में जानता है कि यह पर्याय की न्यूनता है। कितना प्रगट हुआ? कुछ शुद्धता प्रगट हुई है, कुछ शुद्धता बाकी है। इसलिये अभी अन्दर चारित्र की दशा, स्वरूप रमणता विशेष नहीं है, कुछ स्वरूप रमणता है, यह सब ज्ञान में जानता है और आगे बढ़ता है। दृष्टि के बलमें उसे गौण (करते हैं)। पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है। दृष्टि उसे देखती नहीं। दृष्टि में वह दिखाई नहीं देती।